Journal of Socio-Educational & Cultural Research, Vol. 2, No. 5, July-December, 2016 ISSN : 2394-2878

भारत में पर्यावरण सम्बन्धित आन्दोलन और उसमें महिलाओं की भूमिका

डॉ0 जयदेव*

सदियों से महिलाएं नए एवं संपूर्ण मानव जाति के लिए उपयोगी रास्ते खोजती रही हैं। मानव विज्ञानीय खोजों से पता चला है कि वह पहली किसान थीं, बागवानी, सुपोषण एवं दवाई विशेषज्ञ थीं। प्रकृति को संहार से बचाने में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाई हैं। पितृसत्तात्मक समाज में दमन् और शोषण के भार को वहन करते हुए बेहद सीमित उपलब्ध जगह में उन्होंने अपने विस्तार और विकास के रास्ते बनाए हैं। उनके योगदान और अभिव्यक्ति को समझ पना कई बार आसान नहीं होता।

समकालीन भारतीय महिला आन्दोलन का इतिहास काफी संपन्न है लेकिन अभी तक उससे संबंधित लिखित दस्तावेज अपूर्ण ही हैं। समकालीन महिला आन्दोलन की जड़ें बुद्ध के समय में देखी जा सकती है जब सुमंगल माता और भुट्टा ने घर–गृहस्थी और समाज के जंजाल को त्यागकर भिक्षुणी बनने का निर्णय लिया। महाभारत में द्रोपदी की दंतकथा का उदाहरण हमारे सामने है जब उसने शत्रु के राज दरबार में अपने पांच पतियों को चुनौती दी थी। मीराबाई और महादेवियक्का का उदाहरण भी हमारे सामने है जिन्होंने समाज के बंधनों को तोडकर सड़कों पर भक्ति गीत गाए और हमारे लिए कविता और संगीत की एक–समृद्ध वसीयत छोड़ी। महिला आन्दोलन को 19वीं सदी के मध्य में छतीसगढ़ की आदिवासी महिलाओं के पूँजीवाद विरोधी संघर्ष में भी देख सकते हैं। आन्दोलन को सावित्रीबाई फूले की स्त्री शिक्षा और स्वास्थ्य संघर्ष में, विधवाओं के पुनर्स्थापन में, राजा राममोहन राय के सती प्रथा के विरोध में, 1920–30 व 40 दशकों में गाँधी, मार्क्स के क्रांतिकारी आन्दोलनों में तेलंगाना और तैभागा की किसान महिलाओं के संघर्ष में भी देख सकते हैं।

एक बात तो स्पष्ट है कि महिला आंदोलन की शुरुआत कोई अभी हाल में नहीं हुई है न दिल्ली और मुंबई की सड़कों पर हुई है। इसकी शुरुआत हजारों स्थानों पर हजारों तरह से हुई है। इसकी तुलना उस नदी से नहीं की जा सकती जो एक स्पष्ट स्रोत से शुरू होकर एक स्पष्ट जगह समाप्त हो जाती है। वरन् इसमें सैकडों धाराएं मिलती हैं जो स्वयं हजारों धाराओं और झरनों से मिलकर बनी हैं।

आन्दोलन का इतिहास–

आधुनिक भारत के इतिहास में 19वीं सदी में हमें अनेक सुधारवादी आंदोलन– जैसे विधवा पुनर्विवाह, सती प्रथा व बालविवाह पर रोक, स्त्री–शिक्षा आदि मुद्दे दिखते हैं। इसे महिला आदोलन की पहली लहर माना जाता है। आन्दोलन की दूसरी लहर स्वतंत्रता संगाम से जुड़ी है जिसमें महिलाओं ने अनेक स्तरों पर भाग लिया। उस समय कई राष्ट्रस्तरीय महिला संगठन बने जैसे 'आल इंडिया विमेंस कांफरेंस', नेशनल फेडरेशन ऑफ इंडियन विमिन' और विमेंस इंडिया एसोसिएशन। इन्होंने स्त्री शिक्षा, मताधिकार, पर्दा और व्यक्तिगत अधिकारों के मुद्दों को उठाया, महिला आन्दोलन की तीसरी लहर 1947 के बाद से शुरू हुई।

सन् 1947 से 1970 का समय इससे पहले और उसके बाद दोनों ही कालों के मुकाबले निष्क्रिय था। 1947 तक कई महिलाएं और महिला समूह काफी सक्रिय थे। भारत के स्वाधीन होने से उनको महसूस हुआ कि शायद उनके मुख्य लक्ष्य भी मिल गए हैं। संगठनों ने सोचा कि अब उन्हें राजनीतिक मुदूदों से कुछ लेना–देना नहीं है। उन्होंने अपना लक्ष्य समाज कल्याण कार्यक्रम बनाया। इस दौरान महिला संगठनों ने समाज सेवा और कल्याण क्षेत्र में काफी काम किया, देश के विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न सांप्रदायिक झगडों से काफी मारकाट, दंगे फसाद, लूटमार एवं बलात्कार हुए, महिला संगठनों ने शरणार्थियों के पुनर्वास, उनकी बुनियादी जरूरतों को उपलब्ध कराने और सांप्रदायिक सद्भाव बढ़ाने की दिशा में काफी काम किया।

1950 के दशक में गांधीवाद के तहत भूदान आंदोलन चला। भूदान आन्दोलन का उद्देश्य था संपन्न जमींदारों से जमीन लेकर भूमिरहित किसानों में बांटना। यह भूमि के पुनर्वितरण का हिंसारहित

* **असिस्टेन्ट प्रोफेसर (हिन्दी), महामाया राजकीय महाविद्यालय, धनुपुर, हण्डिया, इलाहाबाद**

शांतिप्रिय तरीका था। यह कार्यक्रम उत्तर प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, बिहार तथा कुछेक अन्य राज्यों में चला। इस आन्दोलन में भी महिलाओं की सक्रिय भागीदारी थी। कौसानी (जिला अल्मोड़ा) स्थित कस्तूरबा महिला उत्थान मंडल, कुमायूं की शिक्षिकाओं और छात्राओं ने इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। उत्तराखंड के पहाड़ी इलाकों में सरला बहन के नेतृत्व में महिलाओं ने गांव–गांव जाकर भूदान का संदेश फैलाया। चूंकि ज्यादातर शिक्षिकाएँ और छात्र स्थानीय थीं, वे गांव वालों की भाषा में स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार बातचीत कर सकती थीं। देश के कई अन्य भागो में भी ऐसे ही प्रयत्न हुए। कुछ स्थानों पर आन्दोलन काफी सफल हुआ और काफी भूमि का पुनर्वितरण हुआ, किन्तु आन्दोलन आंशिक रूप से ही सफल रहा और धीरे–धीरे ही ठंडा पड़ गया ।

महिला संगठनों और उनके समर्थकों को कानूनी क्षेत्र में संशोधन में भी काफी सफलता मिली। भारतीय संविधान में लिंग के आधार पर समानता दी गई है। 1944 में हिंदू कोड बिल प्रस्तावित हुआ । इसमें कई सुधार थे, जैसे शादी के लिए रजामंदी की उम्र बढ़ाना, महिलाओं को तलाक का अधिकार, गुजारा भत्ता, महिलाओं का संपत्ति पर अधिकार और दहेज को स्त्रीधन माना जाना। परंतु कई कांग्रेसी इसके विरुद्ध थे। अंत में 1955–56 में यह बिल कई टुकडों में बंटकर चार अलग–अलग अधिनियमों के रूप से पारित हुआ। यह अधिनियम थे–हिंदू विवाह अधिनियम, हिंदू उत्तराधिकार अधियिनम, हिंदू अल्पवयस्क व अभिभावक अधिनियम, गोद लेने एवं गुजारे भत्ते का अधिकार। यह सभी कानून काफी प्रगतिशील थे किंतु समाज में उन्हें अभी आंशिक सफलता ही मिल सकी है। यही बात 1961 में पारित दहेज के कानून पर भी लागू होती है, जिसके तहत दहेज लेना और देना दोनों ही अपराध हैं।

1950 के दशक में महिलाओं के लिए अनेक सरकारी योजनाएं शुरू की गईं। सामुदायिक विकास एवं कई और समाज कल्याण कार्यक्रम बने। इन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण गरीबी कम करना और ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक दशा में सुधार लाना था। सारे देश की महिलाओं में एक नई आशा जगी कि स्वाधीन भारत में उनकी दशा में बुनियादी अंतर आएगा, जनता में विश्वास जगा कि उनकी गरीबी कम होगी। आम जन–स्तर में सुधार आएगा। किंतु अपर्याप्त सरकारी योजनाओं के कारण ग्रामीण महिलाओं की दशा में कोई खास सुधार नहीं आया। सामुदायिक विकास कार्यक्रम अपने सीमित समझ के कारण उनकी बुनियादी जरूरतों जैसे भूमि और कृषि संबंधी, रोटी, कपड़ा, मकान, बच्चों की देखभाल में हस्तक्षेप नहीं कर पाया। महिलाओं की जरूरतों की परिभाषा सरकारी योजनाओं में घरेलू काम जैसे सिलाई–कढ़ाई तथा पापड़ आदि तक ही सीमित रही। उनकी वास्तविक जरूरतों को अनदेखा करके फिर से एक दमनकारी ढांचा खड़ा हो गया जहां उनके विकास के रास्ते खुलने के बजाय और भी बंद होते दिखे। इस स्थिति को साफ होते देर नहीं लगी कि इनसे उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति में कोई विशेष अंतर आने वाला नहीं है।

1960 के दशक में भारत के राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में काफी संकट आया। देश के तमाम कोनों से विरोध के स्वर उठे। बंगाल और बिहार में नक्सलवादियों ने जोर पकड़ा। मार्क्सवादी एवं लेनिनवादियों के नेतृत्व में उठा यह आंदोलन किसानों का विद्रोह था। इसमें नेतृत्व तो महिलाओं का नहीं था लेकिन भागीदारी और योगदान काफी था। महिला किसानों ने भारी खतरा मोल लेकर नक्सलवादियों को संरक्षण, जानकारियां व समर्थन दिया। महाश्वेता देवी के उपन्यास 'हजार चौरासी की मां' में क्रांतिकरियों के परिवारों की यंत्रणा एवं उत्पीड़न का बड़ा यथार्थ चित्रण है।

पूरे देश की महिलाओं में असंतोष और आक्रोश की लहर फैल रही थी। महिला आंदोलन फिर से सार्वजनिक और राजनीतिक क्षेत्रों की ओर अग्रसर हुआ। आर्थिक और राजनीतिक संकट बढ़ने से महिलाओं की आवाजों ने भी जोर पकड़ा। संगठित होकर विकास के नए रास्ते खोजने की एक नई प्रेरणा जगी। पुराने महिला संगठन सक्रिय हुए, और अनेक नए महिला संगठन बने।

महिला और पर्यावरण–सम्बन्धित संघर्षः

उत्तराखंड के सुदूरपूर्व गांवों में ग्रामीण महिलाओं ने एक पर्यावरणीय नारीवादी आंदोलन चलाया जो 'चिपको आंदोलन' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसे सारी दुनिया ने पहचाना और सराहा। इस आंदोलन द्वारा सरल पहाड़ी ग्रामीण महिलाओं ने स्थानीय, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुत ही बुनियादी मुद्दों की ओर ध्यान खींचा। 70 के दशक के आरंभिक वर्षों में शुरू हुआ यह आंदोलन कुमायूं और

गढ़वाल के कई इलाकों में फैला। आंदोलन की शुरूआत 'रेणी' नामक गांव में अचानक ही हुई। एक खेलकूद का सामान बनाने वाली कंपनी के ठेकेदारों की एक टीम पेड़ों की कटाई करने गांव में आई। जब गांव की औरतों को यह बात पता चली तो गांव की एक बुजुर्ग महिला 'गौरा देवी' ने गांव की महिलाओं को इकट्ठा किया और वे कटाई के स्थान पर पहुंच गईं। उन्होंने ठेकदार के आदमियों को जंगलों का पर्यावरणीय महत्व बताते हुए प्रार्थना की कि वे पेड़ों को न काटें। इन्सान की बुनियादी जरूरतें पूरी करने वाले जंगलों का महत्व वे भली भाँति जानती थीं। जब ठेकेदार के आदमियों ने उनकी बात नहीं मानी तो वे पेड़ के तनों को बाजुओं में घेरकर खड़ी हो गईं। उन्होंने कहा 'यह जंगल हमारी माँ है। पहले हमें काटो, फिर पेड़ों को काटो।' मजदूरों को हारकर बिना पेड़ काटे ही वापस जाना पड़ा।

इस बात की खबर सारे इलाके में जंगल की आग की तरह फैल गई। कई गांधीवादी समूह जैसे 'दशोली ग्राम स्वराज्य संघ' (चमोली) और 'पर्वतीय नवजीवन मंडल' (टेहरी–गढ़वाल) ने इसे आंदोलन का रूप देने में मदद की। हालांकि इस आंदोलन में स्थानीय पुरुष भी जुड़े लेकिन यह मुख्य रूप से महिलाओं का आंदोलन ही था। यह उनके विरोध का नतीजा था कि सरकारी समितियां बनीं, अनुसंधान हुए और ऊपरी पहाड़ी इलाकों में जंगलों की कटाई पर रोक लगी।

जंगलों की रक्षा के लिए देश के और भागों में भी आंदोलन हुए, उदाहरणार्थ कर्नाटक में एपिको आंदोलन। अनेक महिला और गैर सरकारी सामाजिक संगठनों ने इसे संघर्ष का मुद्दा बनाया।

पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए दूसरा बड़ा आंदोलन 'बड़े बांधों का विरोध' है। पिछले दो दशकों से टिहरी बांध के निर्माण के खिलाफ विरोध चल रहा है। भागीरथी नदी पर बनाए जाने वाले इस बांध से ऐतिहासिक टिहरी नगर और 123 गांव डूब जाएंगे। साथ में तमाम पर्यावरणीय संपत्ति और स्वपोषित, स्थायी जीवन शैली भी इसकी बलि चढ़ेगी। इस आंदोलन की नींव डालने वाली हैं वहां की हजारों स्थानीय महिलाएं। उनका कहना है कि पर्यावरण नष्ट होगा तो उनका जीवन नष्ट होगा। यही है आधार बड़े बांध–विरोधी आन्दोलन का–चाहे कोयलकारो बांध–विरोधी संघर्ष (दक्षिणी बिहार), या नर्मदा बांध–विरोधी संघर्ष (मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात में सन् 90 के दशक में फैला)। जंगल, जमीन, मैदान, खेत, गांव और घर उनके लिए कितने महत्वपूर्ण हैं यह वे जानती हैं। वे यह भी जानती हैं कि एक बार विस्थापित हो जाने के बाद उनकी गरीबी तो बढ़ेगी ही उनका अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाएगा।

1970 के दशक में देरा के कई भागों में महिलाओं ने शराबखोरी के खिलाफ लडाई छेड़ी, यह मुद्दा 80 और 90 के दशकों में भी महत्वपूर्ण रहा। हरियाणा, आंध्र प्रदेश तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, हिमाचल, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में यह विशेष रूप से चला। महिलाओं का कहना था इससे परिवारों में वितीय संकट तो बढ़ता ही है, घरेलू हिंसा भी बेहद बढ़ती है। महाराष्ट्र के धुलिया जिले में महिलाओं को समर्थन मिला एक वामपंथी संस्था 'काश्तकारी संगठन' से, तो उत्तराखंड में नेतृत्व में थीं गांधीवादी विचारधारा की कुछ महिलाएं। आंध्र प्रदेश में आन्दोलन की आग 'संपूर्ण साक्षरता अभियान' (1990) के दौरान भड़की। इस अभियान को चलाने वाले गैर सरकारी स्वायत्त संगठन थे। हरियाणा और अन्य राज्यों में गैर सरकारी संगठनों ने समर्थन किया। इन आन्दोलनों से शराब बनाने वाले, लाइसेंस धारी वितरक और ठेकेदार, राज्य और केंद्रीय सरकार सभी को नुकसान होता है। शराबखोरी के विरुद्ध हर आवाज उठाने वाले को निजी स्वार्थों की ठोस दीवार से टकराना पड़ता है। विरोध कई तरीकों से किया राया। शराब के मटके फोड़ना, बनाने वालों पर जुर्माना, धरना इत्यादि। आंदोलन से कई राज्यों में शराबबंदी लागू हुई पर जल्दी ही फिर प्रतिबंध हटा लिए गए। निजी हितों के अलावा सरकार भी तो राजस्व भें घाटा नहीं चाहती है। एक्टीविस्ट जानती हैं कि केवल शराबबंदी से समस्या हल नहीं होगी। अन्य तरीके भी अपनाने होंगे। इस समस्या का समाधान नहीं निकला है। परिवारिक स्तर पर महिलाएं शराबखोरी की समस्या से बराबर जूझ रही हैं।

1970 के दशक के प्रारंभ में बढ़ती महंगाई के खिलाफ आंदोलन छिड़ा। इसमें सबसे जोरदार आवाज महाराष्ट्र से उठी। यहाँ भी आवाज उठाने वाले संगठन अलग–अलग विचारधारा के थे। इसमें भाग लेने वाली अग्रणी महिलाएँ थीं समाजवादी पार्टी की मृणाल गोरे, मार्क्सवादी पार्टी की अहल्या रांगेकर तथा कई और राजनीतिक पार्टियों से जुड़ी महिलाएँ। इन्होंने हजारों की संख्या में महिलाओं को

एकजुट किया। इस विद्रोह में हर वर्ग की घरेलू महिलाएं शामिल थीं। अपना आक्रोश तथा विरोध जताने के लिए वे सड़कों पर बेलन और थालियां लेकर निकल आयीं। खाली घी और तेल के डिब्बों का प्रदर्शन हुआ। 20–20 हजार महिलाओं ने इकट्ठा होकर जुलूस निकाले, राशन की दुकानों पर धरना दिया, सरकारी कर्मचारियों का घेराव किया यह आंदोलन गुजरात में भी जोरों से चला। यहाँ इसे 'नवनिर्माण आन्दोलन' का नाम दिया गया। भारी संख्या में छात्रों और घरेलू महिलाओं ने इसमें भाग लिया। एक्टीविस्ट भूख हड़ताल पर बैठे। कोर्ट केसो पर अधारित नुक्कड़ नाटक खेले गए। लोगों ने मिलकर प्रभातफेरियां निकालीं।

बिहार में उसी दौरान (1970के दशक) जयप्रकाश नारायण ने 'संपूर्ण क्रान्ति' का बिगुल बजाया। इसमें उत्तर प्रदेश और बिहार से भारी संख्या में युवावर्ग राजनीति में आया। 'छात्र युवा संघर्ष वाहिनी' का गठन हुआ। कई सक्रिय समाजिक कर्मियों ने अपना घर–बार और शिक्षा छोड़कर अपने को पूरी तरह संघर्ष में झोंक दिया। बोधगया, बिहार इस आन्दोलन के लिए सघन क्षेत्र था। सक्रिय कर्मियों में विशेष उल्लेखनीय हैं–मणिमाला, नीलम, कनक, किरण और मानसी। महिला एक्टीविस्टों ने किसान आन्दोलन में भाग लेकर ग्रामीण महिलाओं के साथ ही काम किया। कई युवाकर्मियों ने गांव वालों के साथ रहकर उनसे नजदीकी रिश्ता बनाया और उन्हें सामंतशाही व्यवस्था की बेड़ियां तोड़ने के लिए प्रेरित किया। गांव वालों ने स्वयं वेतन दहेज और बलात्कार के मुद्दे उठाए। बड़े–बड़े जमीदारों द्वारा हथियाई जमीन को कैसे वापस लिया जाए और कैसे उनका पुनः वितरण किया जाए, इस पर काफी विस्तार से चर्चा हुई। इस पर कागजी कार्यवाही, अदालती सका, प्रत्यक्ष विरोध सब कुछ किया गया। जमीन का एक बड़ा हिस्सा वापस लिया जा कसे। जब उसके पुनः वितरण की बात आई तो महिलाओं ने महत्वपूर्ण मुद्दा यह उठाया कि जमीन क्या केवल पुरुष 'मुखिया' के नाम ही लिखी जाएगी। गरीब खेतिहर महिलाओं ने कहा–यह अन्यायपूर्ण है। जमीन पुरुष और स्त्री दोनो के संयुक्त नामों में की जानी चाहिए। एक तरह से यह बिल्कुल नया मुद्दा था। पहले तो काफी गरमागरमी हुई फिर भी सभी ने माना कि न्यायोचित यही है कि जमीन दोनों के नाम हो। महिलाओं का कहना था जमीन केवल पुरुषों के नाम होने से उनकी ताकत और बढ़ेगी और वे औरतों को और दबाएंगे। इस मुद्दे से यह निकलकर आया कि वर्ग के साथ लिंग का मुद्दा भी नजदीकी से जुड़ा हुआ है और असली प्रगति तथी होगी जब इसे ध्यान में रखा जाए। बराबरी की लड़ाई वर्ग और लिंग दोनों को ही लेकर है। बोध गया आन्दोलन में भूमि महिलाओं व पुरुषों दोनो के नाम की गई। बाद में देश के दूसरे भागों में भी यह बात उठी। आज भी यह एक ज्वलंत मुद्दा है।

सन् 1975 में देश में आपालकाल की घोषणा हुई और आपातकाल के बहाने देश के काफी आन्दोलनों को दबा दिया गया। आपातकाल में लोग उत्तेजित थे और सरकार की कड़ी आलोचना भी हुई। नागरिक स्वतंत्रता और जनतांत्रिक अधिकारों की रक्षा के लिए नए संगठन और समूह गठित हुए। नए संगठनों में अनेक महिलाएं भी सक्रिय थीं जैसे प्रमिला लेविस, वसंत कन्नाबीरन और सुदेश वैद।

सन् 1975 के महिला आन्दोलन का एक और कारण से भी महत्व है। संयुक्त राष्ट्र ने इसे अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष और 1975–85 को महिला दशक घोषित किया। इसने महिला मुद्दों पर कई स्तरों पर ध्यान खींचा। अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों से नई गतिविधयों को प्रेत्साहन मिला, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शोध हुए और नेटवर्किंग हुई।

भारत में महिलाओं के दर्जे पर एक रिपोर्ट तैयार की गई 'स्टेटस ऑफ विमिन इन इंडिया'। इसे सरकार द्वारा गठित एक कमेटी ने काफी मेहनत से तैयार किया। रिपोर्ट में कई चौंकाने वाले तथ्य सामने आए। एक तो यह कि देश में स्त्रियों का अनुपात लगातार घट रहा है। राष्ट्रीय स्तर पर इस ओर ध्यान खींचा। इससे जुड़े अनेक सवाल और अटकलें समाने आईं जिनके उत्तर ढूंढ़ने हेतु अधिक शोध और विश्लेषण की जरूरत समझी गई।

एक ओर महिला आन्दोलन की फैलती स्वदेशी जड़ें दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष और महिलाओं की स्थिति पर रिपोर्ट इनसे काफी लोगों ने भारत में महिला आन्दोलन की आवश्यकता महसूस की। महिलाओं के संघर्ष जारी रहे। 1970, 80–90 के दशकों में अनेक नए समूह और संगठन बनते रहे।